मिलन

(एक प्रेम-कहानी)

व्याकुल हुआ प्रेमपीड़ा से जिसका कभी न प्राण।
भाग्यहीन उस निष्ठुर का है उर सचमुच पाषाण॥

रामनरेश त्रिपाठी

मिलन

(एक प्रेम कहानी)

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग ।

चौथा संस्करण]   होली, १९७९   [मूल्य, चार आना

पहला संस्करण-होली, १९७४-१०००

दूसरा संस्करण-वैशाख, १९७६-२०००

तीसरा संस्करण-होली, १९७७-२०००

चौथा संस्करण-होली, १९७९-२०००

मिलन

पुरुषोत्तम दास लोहिया

U. RAY & SONS, CALCUTTA.

प्रेमोपहार

——:o:——

आया परम हर्षका दिन यह होलीका त्योहार।
मित्र मित्र मिल मोद मनाते हैं विनोद उर धार॥
प्रिय पुरुषोत्तमदास लोहिया! सहृदय मित्र उदार!
प्रेम-सहित स्वीकार करो यह होलीका उपहार॥

होली, सं० १९७४ रामनरेश त्रिपाठी

सबसे प्रथम सृष्टिमें तू ने जहाँ लिया अवतार।
कलरव कर, ऐ मधुर कहानी ! पाया सबसे प्यार ॥
जगत जगाने गई, वहीं अब करने लगी विहार !
आ, अब अपना देश जगा दे घूम घूम प्रति द्वार ॥

मिलन

——:❋:——

पहला परिच्छेद

[१]

नीरव आधी रात अँधेरी शांत दिशा आकाश।
गुपचुप तारागण करते थे झिलमिल अल्प प्रकाश॥
प्रकृति मौन, सचराचर निद्रित, अति निस्तब्ध समीर।
जागृत, वनमें लता-विनिर्मित केवल एक कुटीर॥

[२]

दो जन, प्रणयी और प्रणयिनीका वह शांति-निकेत।
वन के हृदय समान सजग था निद्रा-रहित सचेत॥
जग निद्रित, पर उन आँखों में था न नींद का वास।
क्या कारण था, जो करते थे वे एकान्त निवास!

[३]

प्रणयी युगल कुटी के भीतर अति समीप आसीन।
थे चिन्तित, आसन्न भयाकुल, नयन-निमेष-विहीन॥
व्यथित प्रणयिनी धर प्रणयीके बाहु-मूल पर माथ।
साश्रु नयन धीरे से बोली "प्राणसखा! हे नाथ!

[४]

"मुझे न छोड़ो विजन विपिन में हे प्रियतम! हृदयेश!
मैं अबला न सहन कर सकती विरह-व्यथा लवलेश॥
सरला सुधबुधहीन बालिका शोकानुभव-विहीन।
करो नहीं मुझ कपोतिनी को बधिक-वियोगाधीन॥

[५]

"शक्ति नहीं जो नाथ! तुम्हारा सुन भी सकूँ प्रयाण।
रहते प्राण न जाने दूँगी, मेरे जीवन-प्राण!" ॥
सुन प्रणयी के इन्दु-वदन में मृदुल कौमुदी-हास।
विकसित हुआ, झुकाया उसने शशि को शशि के पास ॥

[६]

चन्द्र-कुण्डली सा वलयित कर रमणी-कण्ठ ललाम।
चिबुक, प्रस्फुटोन्मुख गुलाब धर चूम भाल अभिराम ॥
कहा-"प्रियतमे! प्राणेश्वरि! मम सतत सङ्गिनी बाल!
सभय न हो, मैं नहीं करूँगा आने में अतिकाल ॥

[७]

"जिनके कारण नष्ट हुआ है अपना सुख सु-विलास ॥
गृह तज ग्रहण किया है हमने वन-एकान्त-निवास ॥
जिनके कारण नित करता है अगणित घर उपवास।
इस पर भी सहना पड़ता है जिनका कटु उपहास ॥

[८]

"किया जिन्होंने स्वर्णभूमि को कौड़ी का मुहताज।
किया पददलित हाय! हमारा देव-समर्पित ताज ॥
कण कण में उनका कुनीति की कथा हो चुकी व्याप्त।
हाय! अभी तक हुआ न उनका अत्याचार समाप्त!

[९]

"अणु अणु में हैं व्याप्त इस समय उनके विमुख विचार।
उन्हें देख खग भी उठते हैं उनका अन्त पुकार ॥
प्रतिफल देना उन्हें उचित है धर विकराल कृपाण।
निश्चय है उनका अब होगा बहुत शीघ्र अवसान ॥

[१०]

"क्षुब्ध शीघ्र होने वाला है दुर्गम महासमुद्र।
कबतक उसमें उच्च रहेगा अभिमानी तृण क्षुद्र॥
वे भी समझ गये अपने को घृणित और अनुदार।
उनके इसी भाव से होगी निश्चय उनकी हार॥

[११]

"रक्षित रखने को भूतल पर मनुष्यता का नाम।
उठने वाले हैं ईश्वर के कर असंख्य अविराम॥
अस्थि-चर्म-मय कङ्कालों में जो कुछ बल है शेष।
संचय कर रिपु-रहित करूँगा अपना प्यारा देश॥

[१२]

"रणभेरी बजने वाली है करने को रिपु-नाश।
शीघ्र देश में देखेगी तू विजया! विजय-प्रकाश॥
प्रिये! विदा, प्रियतमे! विदा दो सुमुखि! सहर्ष, सहास।
मैं पतङ्ग हूँ प्रेम-डोर का फिर आऊँगा पास"॥

[१३]

पंकजमालासी प्रणयी के मृदु गलबहियाँ डाल।
दृग-चकोर से देख चन्द्रमुख बोली विह्वल बाल॥
"प्यारे! मूर्त्ति हृदय-मंदिर के! मेरे जीवन-प्राण!
क्या आवश्यक है लेना ही कर में विषम कृपाण?

[१४]

प्रेमभरी चितवन प्राणी को है पीयूष समान।
और घृणा की एक दृष्टि ही है विकराल कृपाण॥
रिपुओं को सब मिलकर देखो घोर घृणाके साथ।
अनायास उनका क्षय होगा मेरे जीवन-नाथ"!

[१५]

सुनकर हँसा युवक, फिर बोला--"प्रिये ! ठीक है बात।
पर इस रमणी-सुलभ अस्त्र से उचित न शत्रु-निपात॥
कुटिल कटाक्ष-पात से करना आहत हत उन्मत्त।
है यह प्रमदा-कर्म, पुरुष के लिये न कीर्ति-प्रदत्त॥

[१६]

वीर-कर्म है खड्ग-हस्त हो जा डटना रण-बीच।
उसे न भीरु बना सकती है सखा सहोदर मीच" ॥
प्रकृत लज्जिता कुछ सकुचा कर बोली--"अच्छा, नाथ !
नहीं रुकोगे, तो रखलो इस दासी को भी साथ॥

[१७]

चिरसङ्गिनी तुम्हारी मैं हूँ मेरे जीवन-नाथ !
जहाँ जहाँ जाओगे मैं भी सदा रहूँगी साथ॥
साथ रहूँगी, पद सेऊँगी छाया सम सब काल।
मेरे नाथ न छोड़ूँगी मैं यह तव बाहु विशाल॥

[१८]

जो न ले चलोगे सँग प्यारे तो करके विष-पान।
होते ही दृग-ओट प्राणधन ! मैं तज दूँगी प्राण" ॥
बोला युवक—"नहीं सुनती जो प्यारी ! मम उपदेश।
चलो, परन्तु बनालो अपना पुरुष--सरीखा वेश॥

[१९]

"लज्जा भय तज, साहस उर धर पुरुषों के अनुकूल।
"तुम रमणी सुकुमारमना हो," यह अब जाओ भूल॥
पर-पद-दलित स्वदेश-भूमि का चलो करें उद्धार।
हम मनुष्य होकर क्यों छोड़े निज पैतृक अधिकार" ॥

[२०]

सुन वाणी हो सफल मनोरथ उमड़ा अमित उमङ्ग ।
पुष्प-भार-अवनता-लता सी तज प्रियतम-तरु-अङ्ग ॥
धीरे धीरे उठी प्रणयिनी सुन पति का आदेश ।
पुरुष-समान किया कर्तन कर एड़ी-चुम्बित केश ॥

[२१]

कञ्ज-कली-कुच कसकर बाँधे समतल किया शरीर ।
पगड़ी बाँध वस्त्र सब पहना तजकर सुन्दर चीर ॥
देख मुकुर में रूप न निजको स्वयं सकी पहचान ।
गिरा-गौरता-सदृश सुमुख पर आई मृदु मुसुकान ॥

[२२]

सस्मित बदन मत्तगजगमनी आई पति के पास ।
वेश विलोक युवक के मुख में विकसित हुआ सुहास ॥
उसने कहा—"प्रिये ! मोहित हूँ नूतन देख विकास ।
पर छिप सकता नहीं विमोहक तेरा नयन-विलास ॥

[२३]

"तड़ित-नयन ये तेरे प्यारी ! हैं सब भेद-निधान ।
बतला देंगे ये चतुरों को झट तेरी पहचान ॥
अब विलम्ब क्या ? चलो प्रियतमे ! जगती-मध्य सुदूर ।
वन का दृश्य ध्यान में धर लो प्राणप्रिये ! भरपूर ॥

[२४]

यह प्रिय कुटी छोड़नी होगी अति सुखदायक गोद ।
यह तरु लता और पशु पक्षी वन के विविध विनोद ॥
फिर कब यहाँ लौटना होगा कह सकता है कौन" ?
यह कह सजल नयन हो प्रणयी मुग्ध हुआ धर मौन ॥

[२५]

विजया बोली–"प्राणाधिक प्रिय ! यह द्रुमलता-वितान।
तजना होगा, यह विचार कर बहुत विकल हैं प्राण ॥
शान्त सुखद क्या नाथ ! यहाँ से बढ़ कर है संसार ?
वन्य सखाओं से बढ़कर क्या है जग–जन का प्यार ॥

[२६]

देखा भी तो नहीं कि कैसा सुन्दर है संसार ?
अब तक था संसार मुझे तो यही लता–आगार ॥
सुनती हूँ संसार विषम है द्वेष कपट की खान।
क्यों चलते हो वहाँ कहो फिर मेरे प्रियतम प्राण !

[२७]

नाथ ! तुम्हारी आज्ञा से ही करती हूँ प्रस्थान।
पर इस लता-भवन के आगे है जग नरक समान" ॥
बोला प्रणयी—"प्राणवल्लभे ! ऐसी बात न बोल।
जग ही में जाना जाता है मनुष्यता का मोल ॥

[२८]

ईश्वर-भक्ति, लोक-सेवा है एक अर्थ दो नाम।
बन में बस कैसे हो सकता है मनुजोचित काम ॥
पृथिवी पर सुख शान्ति बढ़ाना देकर निज श्रम-शक्ति।
मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरि–भक्ति ॥

[२९]

"बाल-सखा इन बन-जीवों का प्रिये ! तजो अब मोह।
सहना ही होगा अब हमको इनका विषम बिछोह" ॥
चिरपरिचित वृक्षों से मिल कर देख विहंग कुरंग।
तब आनन्दकुमार चल पड़े ले विजया को सङ्ग ॥

[३०]

धीरे धीरे धीरे दोनों चले विपिन-पथ बीच।
मानो उनका हृदय रहा था कानन पीछे खींच॥
पीछे देख आह भरते थे दोनों बारम्बार।
दीर्घ श्वास तज किया उन्होंने चिरपरिचित बन पार॥

[३१]

बीती निशा, उषा उठ आई पहन सुनहला चीर।
प्रणयी युगल विमोहित पहुँचे तरंगिणी के तीर॥
बँधी तटस्थ वृक्ष से नौका बंधन सत्वर खोल।
दोनों चढ़कर लगे चलाने प्रमुदित मन जय बोल॥

[३२]

इस विध तरी युगल प्रणयी की जा पहुँची मँझधार।
जहाँ गँभीर अथाह श्यामतल थी जल-राशि अपार॥
उसी समय हो गई प्रकृति अति क्षुब्ध नितान्त अशान्त।
दिशा भयानक हुई, कँप उठा व्योम-वारि-वन-प्रान्त॥

[३३]

क्षण में घन घिर आये करते कड़ कड़ गर्जन घोर।
बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन वृक्षों को झकझोर॥
होने लगी वृष्टि रिमझिम कर अविरत मूसलधार।
आन्दोलित लहरें तरणी पर करने लगीं प्रहार॥

[३४]

तरी लगी उलटने पलटने ग्रसित, विवश, निरुपाय।
'अब डूबे' 'तब डूबे' तरणी अनाधार असहाय॥
खड़े अर्ध जलमग्न तरी में दोनों प्रणयी धीर।
करना है जल-गर्भ-वास अब पहुँच न सकते तीर॥

[३५]

देख प्रकृति का कोप भयानक बोला प्रणयी वीर।
प्रिये! हमें अब तजना होगा यह क्षणभंगु शरीर॥
देह त्यागने का है मुझको प्रिये! न तिल भर खेद।
जागृति और स्वप्न सा मरने जीने में है भेद॥

[३६]

"खेद यही है हुआ न पूरा मेरा मनोभिलाष।
इस तन से स्वदेश-सेवा की रही न अब तो आस॥
आओ एक बार प्राणेश्वरि! लें हम भुज भर भेंट।
शय्या करें अतल जल में फिर आशा सकल समेट॥

[३७]

"मैं संगिनी सदा हूँ प्यारे" बोली हँसकर बाल।
कण्ठ-समर्पित हुये उभय के बाहुमाल तत्काल॥
मुख चुम्बन कर, देख एकटक, फिर दृगपट कर बन्द।
धारण कर प्रिय-मूर्ति हृदय में पाकर परमानन्द॥

[३८]

वे स्वर्गीय शान्ति से भूषित प्रेमी शोक-विहीन।
जीवनमयी तरी के सँग में जल में हुए विलीन॥
प्रकृति थिर हुई, पवन थम गया, सब हट गये पयोद।
जागृत हुआ चराचर में फिर सुख आमोद प्रमोद॥

[३९]

अंशुमालि के शुभागमन की बेला समझ समीप!
नभ में बुझा चुके थे सुर भी निज निज घर के दीप॥
कलरव, सुमन-विकास संग ले निकली रवि की कोर।
क्षणभर पहले ही दो प्रेमी कहाँ गये? किस ओर?

[४०]

फिर पहिले सा सुगम सम हुआ तरंगिणी का पाथ।
तरी कहाँ है ? सद्य प्रस्फुटित कुसुम-कली ले साथ॥
कुमुद कुमुदिनी मुँदे देखकर प्रखर दिनेश-प्रकाश।
नहीं निकलने भी पाया था विश्व-विमोहक वास॥

दूसरा परिच्छेद

[१]

गगन-नीलिमा में हीरे का तेजपुंज अभिराम।
एक पुष्प आलोकित करता था जल-थल-नभ-धाम॥
बरछी सी उसकी किरनों से खाकर गहरी चोट।
अंधकार हो क्षीण छिपा जा तरु-पत्तों की ओट॥

[२]

पूर्व क्षितिज से कुछ ऊपर उठ वह अति विमल प्रकाश।
करता था सब सचराचर की निद्रा तन्द्रा नाश॥
तरल तरंगित सरित-सलिल में उसकी प्रभा ललाम!
लहक रही थी, ज्यों झड़ते हों रजत-पुष्प अभिराम॥

[३]

दिव्य मूर्ति मुनि एक तपोधन शांत-वृत्ति मतिधीर।
भरते थे जलपात्र नीर से उस तटिनी के तीर॥
बहता देख एक शव जल में उन्हें हुआ संदेह।
सदय हृदय कौतूहलवश हो धर ली बढ़कर देह॥

[४]

बाहर लाकर पुरुष-वेश में देखा नारी-रत्न।
कांति देख मुख पर जीवन की मुनिवर हुये सयत्न॥
झट निकटस्थ कुटी में शव को लाकर कर उपचार!
मुदित हुये चैतन्य बनाकर मुनि सद्‌गुण-आगार॥

[५]

उठ बैठी वह चकित मृगी सी पुरुष-वेशिनी वाम।
देख सामने मुनिको उसने किया सप्रेम प्रणाम॥
इधर उधर वह लगी देखने ठौर अपरिचित जान।
रहा न अपने पुरुष-वेश का उसे उस समय ध्यान॥

[६]

फिर उसने अति व्याकुलता से खोले अधर-प्रवाल।
कहा—"कहाँ हूँ कहो कृपाकर हे मुनि! मैं इस काल॥
कहाँ गया प्राणेश्वर मेरा? शीघ्र कहो मुनिनाथ!
हम दोनों जल-मग्न हुये थे प्रभो! एक ही साथ॥

[७]

"प्रियतम बिना न जी सकती हूँ बच न सकेंगे प्राण"।
अश्रु गिराकर व्याकुलता का दृगने दिया प्रमाण॥
नारी उसको जान चुके थे पहले ही मुनिवर्य।
इससे हुआ न उनको उसकी बातें सुन आश्चर्य॥

[८]

वे बोले अति स्नेह-भाव से, "पुत्री! हो न हताश।
जाता हूँ मैं शीघ्र खोजने तेरे पति की लाश॥
पर जबतक मैं लौट न आऊँ जाना कहीं न और।
यहाँ रहो सुख से हे बेटी! है यह निर्भय ठौर"।

[९]

यों कह चले तीर को द्रुतपद पर-हित-साधन-व्यग्र।
प्रथम किया अन्वेषण मुनि ने तट निकटस्थ समग्र॥
देख न पड़ी कहीं जब बहती जल में कोई लाश।
तब मुनि चले प्रवाह-दिशा में करते हुये तलाश॥

[१०]

उस एकान्त कुटी में क्षण भी रख न सकी मन शांत।
विजया हुई विरह से व्याकुल श्रांत क्लांत उद्भ्रांत॥
बाहर आकर लगी देखने कानन का शृङ्गार।
पर प्रिय-दर्शन-तृषित दृगोंमें था न प्रकृति-प्रति प्यार॥

[११]

प्रेम विचित्र वस्तु है जग में अद्भुत शक्ति-निधान।
निद्रा में जागृति, जागृति में है वह नींद समान॥
प्रेम-नशा जब छा जाता है आँखों में भरपूर।
सोना जगना दोनों उनसे हो जाते हैं दूर"॥

[१२]

प्रेम एक है पर प्रभाव है उसका युगल प्रकार।
प्रेम सयोग वियोग काल में सुखप्रद, दुखद अपार॥
फूल विहीन गन्धसे जैसे चन्द्र चन्द्रिका-हीन।
योंहीं फीका है मनुष्यका जीवन प्रेम-बिहीन॥

[१३]

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम-रूप भगवान।
प्रेम विश्व का संस्थापक है, प्रेम विश्व का प्राण॥
प्रेम जाति का जीवन जग में, प्रेम अभेद अशोक।
प्रेम सभ्यता का भूषण हैं, प्रेम हृदय-आलोक॥

[१४]

जग की सब पीड़ाओं से है होता हृदय अधीर।
पर मीठी लगती है उर में सत्य प्रेम की पीर॥
व्याकुल हुआ प्रेम-पीड़ा से जिसका कभी न प्राण।
भाग्यहीन उस निष्ठुर का है उर सचमुच पाषाण॥

[१५]

जिस पर दया-दृष्टि करते हैं मंगलमय भगवान।
पूर्ण प्रेम-पीड़ा से पीड़ित होता है वह प्राण॥
जिसने अनुभव किया प्रेम की पीड़ा का आनन्द।
उससे बढ़ है कौन जगत में सुखी और स्वच्छन्द॥

[१६]

प्रेमोन्मत्त हृदय में रहता है न विरोध न क्रोध।
दुर्गुण नहीं प्रेम-पथ का कर सकता है अवरोध॥
मधुर प्रेम-वेदना-मुग्ध जन सुख निद्रामय मस्त।
है देखता प्रेम-छवि दृगभर फिरकर जगत समस्त॥

[१७]

फूल पंखड़ी में पल्लव में प्रियतम-रूप निहार।
तुरत उमड़ आता है उसके उर में मोद अपार॥
कली देख करने लगता है हास्य प्रमत्त-प्रलाप।
"देखें कबतक इन पत्तों में लुके रहेंगे आप"॥

[१८]

ज्योत्स्ना कभी सरित जल में है करती केलि-विलास।
उज्ज्वल विमल रजत कणिकामय रेत राशि पर वास॥
प्रेम भरे अधखुले दृगों से शशि को देख सहास।
प्रेमी समझ मुग्ध होता है प्रियतम–हास–विकास॥

[१९]

उसे प्रेममय लगता है सब सचराचर संसार।
प्रेम-मग्न करता है वह नित प्रेमोद्यान-विहार॥
प्रेम-वेदना-व्यथित हृदय से मथित प्रेम की आह।
कढ़कर भूतल में भरती है नवजीवन उत्साह॥

[२०]

करुणा भरे प्रेम के आँसू ढलकर सुधा समान।
सींच दया की जड़ देते हैं जग को आश्रय-दान॥
जन जनमें प्रेमी को दिखती है प्रियतम की कांति।
इससे उसे लोक-सेवा में मिलती है अति शांति॥

[२१]

पीड़ित की पीड़ा, भूखे की क्षुधा, तृषित की प्यास।
उदासीनता निराश्रयों की, आशारहित उसास॥
क्लेशित जातिके उन्नति-पथ के कंटक चुन कर दूर।
प्रेमी परम तृप्त होता है आह्लादित भरपूर॥

[२२]

दया नहीं, कर्त्तव्य नहीं, वह है न किसी का दास।
है चाहता देखना वह तो प्रियतम-रूप-विकास॥
रूप कहाँ है ? आर्त्त-मुखों पर प्रकृत हर्ष का हास।
जब खिलता है, देखो उस में प्रियतम-रूप-विकास॥

[२३]

रे मतिमन्द ! न कर प्रेमी को बन्दीगृह में बन्द।
कर देगा वह अन्य बन्दियों को भी चिर स्वच्छन्द॥
हैं स्वतंत्र प्रभु, स्वतन्त्रतामें बसते हैं भगवान।
प्रेमी उन्हें प्रत्यक्ष करेगा करके विविध विधान॥

[२४]

अकथनीय है प्रेम-पीड़ितों की सब अद्भुत बात।
वास कहाँ है ? जहाँ जा बसे, सन्ध्या कहीं प्रभात॥
प्रेम-विह्वला विरह-विताड़ित विजया परम अधीर।
छोड़ कुटीर चली खिँचती सी तरंगिणी के तीर॥

[२५]

तीर पहुँच कर देखी उसने सलिल-राशि गम्भीर।
सतत प्रवाहित पूर्व दिशा में समय समान अधीर॥
ठीक दोपहर, व्योम-मध्य रवि, प्रखर समुज्वल धूप।
सरित-मुकुर में देख रहे थे दिननायक निज रूप॥

[२६]

रूप-गर्विता तरंगिणी का था सब सुन्दर अङ्ग।
छबि छलकी पड़ती थी मानो तटपर चढ़ी तरङ्ग॥
पतिप्राणा सम नदी मित्र की प्रतिछवि उर में धार।
गमनशील थी कलकलस्विनी करती हुई विहार॥

[२७]

देख सरित-शोभा विजया के लगी घाव में ठेस।
बोली, "ठगिनी सा है तेरा सरिते! मोहक भेस॥
तू ने मेरे जीवन-धन को लिया अचानक छीन।
देख न सकी हाय! सुख मेरा, रे विषमना मलीन!

[२८]

शोक मान मेरी विपत्ति में सब ने तजा विलास।
खग ने गान, लता ने हिलना, मृग ने गमन-प्रयास॥
मुझे अभागिन विधवा कर तू हुई न तनक उदास।
अठिलाती नाचती चली तू कलकल कर उपहास॥

[२९]

प्राणनाथ-रवि बिना पड़ा है सूना हृदय-अनन्त।
मृदुल लता कर ग्रीष्म-हस्तगत बिछुड़े कहाँ बसन्त॥
हा! स्वदेशसेवा-व्रत-तत्पर सद्गुण के आगार!
बिना तुम्हारे कौन करेगा प्रियतम! देशोद्धार॥

[३०]

तुम से थी उर में भविष्य के शुभ आशा उत्पन्न।
उसे न करो हृदय-धन मेरे वञ्चित और विपन्न॥
स्नेह-मूर्त्ति पर-हित-रत सत्तम करुणा के अवतार।
हाय! कहाँ हैं, भँवर-ग्रसित नैया के मुनि पतवार॥

[३१]

हाय! पूर्वकृत पापों का क्या हुआ समाप्त न भोग।
जो मैं जाग उठी सहने को विषवत विषम वियोग"॥
विजया, प्रेम-विनिद्रित विजया, बिसुध चेतनाहीन।
प्रियतम! प्राणेश्वर! पुकारती कुररी सी अति दीन॥

[३२]

चली नदी-तट-पथ से चलते चलते पश्चिम ओर।
ठौर मिला, जीवन-सन्ध्या का जहाँ हुआ था भोर॥
कृशता,तरणि-ताप,पथ-श्रम,फिर विरह-ताप विकराल।
सुधि प्रभात की घृत आहुतिसी बाल न सकी सँभाल।

[३३]

प्रेमोन्मादमयी विरहिन से सहा न गया कलेश।
कूदी नदी-अङ्क में कहकर हा! प्रियतम! प्राणेश!॥
जब विक्षिप्त तप्त सिर ऊपर पड़ा सुशीतल नीर।
जागी शक्ति चेतना की फिर श्रमगत हुआ शरीर॥

[३४]

हेमाङ्गिनी नीर से निकली विगत सकल सन्ताप।
बोली—"हाय, हो रहा था यह मुझ से भीषण पाप॥
किया दृगों ने प्राणेश्वर की रूप-सुधा का पान।
श्रवणों ने है सुना मनोहर उनका मंगल गान॥

[३५]

सुखी हुये ये भुज वेष्टन कर प्रियतम-कंठ-प्रदेश।
कई बार उनके हाथों से सुलझे थे यह केश॥
मुझे उचित है नहीं छोड़ना इन अंगों का साथ।
इन से बहुत प्यार करते थे मेरे जीवन-नाथ॥

[३६]

अब कर्त्तव्य यही है पूरा करूँ वही उद्देश।
जिनकी पूर्त्ति-हेतु उद्यत थे मेरे प्रिय प्राणेश॥
पति-अभिलाष पूर्ण करना ही है मेरा ध्रुव धर्म।
सदा करूँगी मैं स्वदेश की सेवा का शुभकर्म॥

[३७]

जिस प्रकार से अब स्वदेश का होगा पुनरुत्थान।
वही करूँगी यत्न अहर्निश देकर तन मन प्रान"॥
इस प्रकार विजया दृढ़ता से करती थी मन शान्त।
उसी समय में एक शब्द से ध्वनित हुआ वन-प्रान्त॥

[३८]

जैसे किसी मनुष्य के लिये कोई उठा पुकार॥
मुनि का शब्द समझ कर विजया दौड़ी वृत्ति बिसार॥
काँटों में उलझती सुलझती गिरती पड़ती बाल।
फिर प्रज्वलित हुई उर अन्तर विरह बन्हि बिकराल॥

[३९]

हा प्रियतम! प्राणेश! प्राणधन! करती हुई पुकार।
बहुत दूर घुस गई विपिन में मिला न वार न पार॥
कहाँ जाय, क्या करे, न पथ है, न है दिशा का ज्ञान।
विरह-विदग्ध हृदय में उसके उमड़ा शोक महान॥

[४०]

चारों ओर खड़े थे केवल अगणित वृक्ष विशाल।
कभी कभी गर्जन कर उठते थे वन-जन्तु कराल॥
प्रेम-विवश सहती सब संकट अति व्याकुल बेहाल॥
एक वृक्ष के तले बैठकर रोई अबला बाल॥

---

* तीसरा परिच्छेद *

[१]

कुछ पथ तै कर पूर्ण हो गया मुनि का मनोभिलाष।
देख पड़ी बहती धारा में एक युवक की लाश॥
होती देख सफलता श्रम में मुनिवर हुये प्रसन्न।
जल में घुस शव ले बाहर हो हुये यत्न-सम्पन्न॥

[२]

युक्ति-विलक्षण कला-निपुण मुनि करके द्रुत उपचार।
हुये मुदित अवलोक देह में कुछ समीर-संचार॥
युवक सजीव हुआ पर उसकी मूर्च्छा हुई न भङ्ग।
चलती थी बस साँस, नहीं हिलता था कोई अङ्ग॥

[३]

उसे कुटी में ले आये मुनि पर-हित-साधक वीर।
विस्मित हुये बिना विजया के सूनी देख कुटीर॥
कुश-किशलय की बिमल साथरी धूनी के नजदीक।
शीघ्र बिछा मुनि ने पौढ़ाया उस पर युवक-प्रतीक॥

[४]

फिर "पुत्री!" कह लगे खोजने आसपास वन-पाथ।
बहुत बुलाया, पर वह तो थी फँसी प्रेम के हाथ॥
कुछ धीरज से ही हो जाती पूरी मन की बात।
पर वह बात नहीं होने दी उसे प्रेम ने ज्ञात॥

[५]

भ्रम में फँस हँसता रोता है करता मेल अमेल।
प्रेम-विवश करता मनुष्य है, नये नये नित खेल॥
वर्तमान भावी दोनों के बीच निमिष का एक।
परदा डाल प्रेम करता है अर्थ अनर्थ अनेक॥

[६]

बहुत खोजने पर जब विजया मिली न तब तज आस।
कुछ चिन्तित होकर आ बैठे मुनि धूनी के पास॥
धूनी की गर्मी से भागी शीत छोड़ आधार।
नस नस में हो चला युवक के शोणित का संचार॥

[७]

सिकुड़न रहित ललाट ललित अति उन्नत कला-निधान।
पौरुष-पूर्ण विशद वक्षस्थल वृषभ-कन्ध बलवान॥
परिघ-समान प्रलम्ब युगल भुज पृथुल कठिन भुजदण्ड।
अङ्ग अङ्ग से छलक रही थी शोभा शक्ति प्रचण्ड॥

[८]

मनोभाव-भूषित मुख-मण्डल सुन्दर अति गम्भीर।
मुग्ध हुए मुनि देख युवक का गठित वलिष्ठ शरीर॥
मुनि सतृष्ण नेत्रों से उसकी ओर निहार निहार।
करने लगे आह भर शीतल मन में विविध विचार॥

[९]

"जैसी है इसके शरीर की गठन सुरूप-निधान।
उससे तो निश्चय यह होगा कोई पुरुष महान॥
अर्द्धचन्द्र-सम भाल सुचिक्कण मुखका भाव गँभीर।
बतलाता है, यह अवश्य है ब्रह्मचर्य-व्रत-वीर॥

[१०]

इसका है शरीर ही इसके संयम का सुप्रमाण।
तो क्या होगा नहीं हृदय में देशभक्तिमय प्राण ?
सुन्दर रूप रुचिर आकृतिमय शोभित मंजु विकास।
सुमन सुगन्ध-रहित है, कैसे करें शीघ्र विश्वास !"

[११]

यदि स्वदेश-सेवा-व्रत धारण कर ले यह नररत्न।
तो अपने अभीष्ट साधन का समझूँ सफल प्रयत्न॥
मुनि यों विरच रहे थे मन में प्रिय कल्पना कलाप।
उसी समय वह युवक स्वप्न-वश करने लगा प्रलाप॥

[१२]

"विजया ! प्रेम रूपिणी विजया ! प्राणवल्लभे ! वाम !
तूने यह पूछा है मुझसे प्रश्न बड़ा अभिराम !
यही पूछती हो न, प्राणमयि ! मेरे हृदय-मँझार।
तेरा ? या स्वदेश-सेवा का ? किसका बढ़कर प्यार ?

[१३]

यदि तू रहे देश-सेवा में मेरे सँग सब ठौर।
तो तुझसे बढ़कर इस जग में प्रिय है मुझे न और"॥
चुप हो रहा युवक यह कह कर देश-भक्तिमय बात।
सुन मुनि हुये प्रफुल्लित पुलकित अति रोमाञ्चित गात।

[१४]

गद्गद कण्ठ हुआ; उर-भीतर उमड़ा हर्ष अपार।
प्यार भरे नयनों से मुनि के बही प्रेम की धार॥
दोनों हाथ जोड़ कर मुनि ने हरि को किया प्रणाम।
मिला दया से जिसकी ऐसा देश-भक्त गुण-धाम॥

[१५]

धीरे धीरे कुछ घण्टों में हुई शिथिलता दूर ।
युवक प्रसन्न वदन उठ बैठा शान्त स्वस्थ भरपूर ॥
घटना स्मृति-पट पर प्रभात की छाया सी अति क्षीण ।
थी अङ्कित, पर ध्यान न आया, था मन अति स्वाधीन ॥

[१६]

मुनि को देख प्रणाम किया फिर ठौर अपरिचित देख ।
झलक पड़ी उसके मुख-मंडल पर विस्मय की रेख ॥
उसने कहा, "कहाँ हूँ मैं अब, है यह किसका धाम ?
किसने करके दया दिया है मुझे यहाँ विश्राम" ?

[१७]

मुनि ने कहा, "तुम्हारा हे सुत ! मृतक समान शरीर ।
पाया था मैंने प्रवाह में तरंगिणी के तीर ॥
परमेश्वर की अतुल दया से तुम फिर हुये सजीव ।
देख तुम्हें चैतन्य, हुआ है मुझको हर्ष अतीव" ॥

[१८]

अब सुधि में आई प्रभात की घटना भरी विषाद ।
आहत हुआ युवक मन ही मन विजया की कर याद ॥
पूछा उसने, "हे मुनि ! कोई लाश मिली क्या और" ।
मुनि ने कहा, "तुम्हीं थे केवल मुझे मिले उस ठौर" ॥

[१९]

मुनि ने नहां कहा विजया के मिलने का वृत्तान्त ।
सोचा, चित्त कदाचित सुनकर होगा अधिक अशांत ॥
बोले फिर, "हे सुत ! तुम अपना परिचय करो प्रदान ।
किस कारण से तुमने जल में किया समर्पण प्रान" !

[२०]

बोला युवक उसे स खींचकर, "मुनि तप-तेज-निधान।
कथा बड़ी विस्तृत है मेरी घटनाओं की खान॥
पर मुनिवर! मैं नहीं आपकी आज्ञा सकता टाल।
थोड़े में, संक्षिप्त रूप से कहता हूँ सब हाल॥

[२१]

इसी देश, इटली में मेरे पिता परम मतिमान।
मिलन नगर के अधिवासी थे धन, गुण गौरववान॥
अल्प वयस्क मुझे प्रिय जननी गई जगत में छोड़।
क्रीड़ास्थल मेरा उस दिन से रहा पिता का क्रोड़॥

[२२]

अबकी भाँति मचा था तब भी दुखमय हाहाकार।
निठुर आष्ट्रियन नित करते थे अगणित अत्याचार॥
सुनकर दुसह दीन दुखियों की हृदय-विदारक हाय।
करने चले पिता रक्षा का उनकी उचित उपाय॥

[२३]

राजकर्मचारीगण इससे हुये सरोष सकोप।
न्यायालय में किया बुलाकर मिथ्या दोषारोप॥
दिये गये कितने प्रमाण पर सिद्ध न हुआ उपाय।
कर्मचारियों ने करवाया मनमाना अन्याय॥

[२४]

कर्मचारियों से ले करके न्यायी ने उत्कोच।
किया घोर अन्याय, न्याय के नाम बिना सङ्कोच॥
अर्थदंड से दिया पिता को अच्छी तरह दबोच।
उपजा प्रबल पिता के उर में शांति-विमोचन सोच॥

[२५]

उच्च न्यायियों के समीप तक करते हुए पुकार।
पहुँचे पिता, परन्तु वहाँ भी हुआ विनय बेकार॥
वे हाकिम अन्याय-समर्थक पाये गये तमाम।
अत्याचारी को भाता है कहाँ न्याय का नाम॥

[२६]

तब से पिता मग्न रहते थे चिन्ता में दिन रात।
राजकर्मचारी फिर करने लगे नये उत्पात॥
मेरे पुर के पास विपिन में एक साधु विद्वान।
रहते थे, उनका करते थे पिता बहुत सम्मान॥

[२७]

एक दिवस क्या हुआ, समाई उनके जी में बात।
मुझे गोद ले चले विपिन को तज घर पुर सब नात॥
पहुँच कुटी में कहा साधु से विनय सहित कर जोड़।
"मैंने दिया आज से अपना धाम धरा धन छोड़॥

[२८]

अब असह्य हो गया प्रजा पर प्रतिदिन अत्याचार।
सुना नहीं जाता है मुझसे उनका हाहाकार॥
बढ़ता ही जाता है उनमें दुर्गुण बैर बिरोध॥
जान बूझकर किया जा रहा है गुण का अवरोध॥

[२९]

बैर विरोध प्रजा के हित के है सदैव प्रतिकूल।
पर है वही कुनीति-तन्त्र का सब से मोटा मूल॥
है न प्रजा के जिसकी भाषा भेस स्वभाव समान।
वह उनके हित पर कब देगा किस मतलब से ध्यान!

[३०]

प्रजा रुष्ट है इस कुतन्त्र से, निश्चय होगी क्रान्ति।
अत्याचार हटा कर तब मैं ग्रहण करूँगा शान्ति॥
गुरु सम मान्य आप हैं मेरे भ्राता मित्र समान।
यह प्रियपुत्र आज से मैंने किया देश को दान॥

[३१]

देकर देशभक्ति की शिक्षा करके सुदृढ़ विचार।
करियेगा स्वदेश-सेवा के लिये इसे तैयार॥
हो यह बड़ा, इसे कहियेगा मेरा यह सन्देश।
"है स्वातन्त्र्य मिलन का तेरे जीवन का उद्देश"॥

[३२]

यह कह पिता गये घर तजकर कहाँ? मुझे अज्ञात।
रहने लगा उसी दिन से मैं कुटिया में दिनरात॥
मुझ से कुछ छोटी कन्या थी साधु देव के एक।
हम दोनों को लगे पढ़ाने वे सहर्ष सविवेक॥

[३३]

हम दोनों थे साथ खेलते, पढ़ते, करते गान।
दो तन थे, पर हम दोनों के हुये एक मन प्रान॥
कुछ दिन बाद साधु का आया अन्तिम काल समीप।
हमने समझा, आज बुझेगा इस कुटिया का दीप॥

[३४]

बुला साधु ने मुझे सुनाया पिता-कथित सन्देश।
फिर हम दोनों को देकर अति मङ्गल-प्रद उपदेश॥
मुझसे पाणि-ग्रहण कराया कन्या का सानन्द।
स्वर्ग सहर्ष सिधारे सत्तम सुधी साधु स्वच्छन्द॥

[३५]

मुनि की आज्ञा से यद्यपि था पकड़ा उसका हाथ।
पर गृहस्थवत भाव नहीं था मेरा उसके साथ॥
उस स्वाध्वी शिक्षिता सती का था विजया शुभ नाम।
शोक, आज सरिता में उसने पाया चिरविश्राम॥

[३६]

प्रेममयी विजया से मुझको मिलता था आह्लाद।
पर संदेश पिता का हरदम रखता हूँ मैं याद॥
जब तक देश स्वतन्त्र न होगा मिटकर अत्याचार।
तब तक मैं संयमी रहूँगा ब्रह्मचर्य-व्रत धार॥

[३७]

निज जीवन में पूर्ण करूँगा अपना मनोभिलाष।
खेद यही है, विजया की भी पूरी हुई न आश"॥
युवक चुप हुआ, उसके मुख पर छा आया कुछ शोक।
सुनकर मुनि अति मुग्ध हर्ष के आँसू सके न रोक॥

[३८]

कुछ क्षण के उपरान्त युवक फिर बोला-"हे मुनिराज!
कृपया मुझे बताओ कैसे करें देश का काज।
क्या क्या विघ्न पड़ेंगे इसमें, कैसे होंगे दूर।
निज अनुभूत ज्ञान से हे मुनि! मुझे करो भरपूर"॥

[३९]

बोले मुनि "हे पुत्र! देश की है गति अति प्रतिकूल।
धीरे धीरे क्षीण हो रहा है स्वजाति का मूल॥
जहाँ स्वर्ग-सुख भोग रहे थे अति प्रसन्न सब लोग।
आज वहाँ पर गरज रहे हैं नित दुकाल दुख रोग॥

[४०]

नरक-यन्त्रणा से बढ़कर है छाया संकट घोर।
मानव-दल में मची हुई है त्राहि त्राहि सब ओर॥
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, उद्यम का न उपाय।
बन भी नहीं ठौर टिकने को कहाँ जायँ क्या खायँ!

[४१]

लाखों नहीं, करोड़ों को है सुख से हुई न भेंट।
मिलता नहीं जन्मभर उनको खाने को भर पेट॥
दिखती नहीं किसी के मुँह पर प्रसन्नता की रेख।
भ्रमते हुये पेट-चिन्ता में पड़ते हैं सब देख॥

[४२]

चोरी जारी छल प्रपंच अघ आडम्बर पाखंड!
बढ़ते जाते हैं जनता में दुर्गुण परम प्रचंड॥
सब का एक मूल कारण है, दरिद्रता विकराल।
भौन भौन में भरे भूत से भूखे नर-कंकाल॥

[४३]

इस कुतन्त्र में तो दरिद्रता कभी न होगी दूर।
यह कर देगा शीघ्र जाति को निर्बल चकनाचूर॥
जब तक इस कुतंत्र-बंधन से होंगे हम न स्वतंत्र।
तब तक सिद्ध न हो सकता है कोई हितकर मंत्र॥

[४४]

कैसा है सुगंधमय सुन्दर यह गुलाब का फूल।
पर इसकी डालों में हैं ये कैसे तीखे शूल॥
लोग चूमते चिपकाते हैं उर से प्यारा फूल।
शूल बिना उसका कब बचता डाल पात तन मूल?

[४५]

पर यह जाति नितान्त सरल है निरी दयालु उदार।
उठा रहे हैं लोग निरंकुश इससे लाभ अपार॥
तुमको इसके उन्नति-पथ में बहुत मिलेंगे कष्ट।
यत्न स्वारथी सदा करेंगे करने को पथ-भ्रष्ट॥

[४६]

पर तुम नहीं हिचकना बेटा! करना मन न उदास।
रखना सदा आत्मबल ऊपर अटल अचल विश्वास॥
आते हैं विघ्नों के झोंके बारम्बार प्रचण्ड।
गिरते हैं तरु, पर रहता है गिरिवर अटल अखण्ड॥

[४७]

पहिये को देखो, यदि पृथ्वी करे नहीं अवरोध।
क्या वह आगे बढ़ सकता है करके भी अति क्रोध?
विघ्नों ही से कर सकता है उन्नति को बल प्राप्त।
विघ्न मिटा, समझो उन्नति की गति हो गई समाप्त॥

[४८]

विघ्नों से जाकर भिड़ जाना सम्मुख सहना तीर।
ऐसा साहस ही कर देगा अमर अभेद्य शरीर॥
जो रहती है जाति जगत में मरने को तैयार।
वही अमरता का पाती है ईश्वर से अधिकार॥

[४९]

बेटा! जाओ, करो जाति-हित के सब उत्तम काम।
शुभ अभिलाषा का देता है ईश्वर शुभ परिणाम॥
मन उन्नत करना जनता का मिथ्या भय कर दूर।
संग्रह करते रहना चुनकर सबल साहसी शूर॥

[५०]

कभी किसी से घृणा न करना मत करना बकवाद।
विरोधियों की चाल समझना, करना नहीं प्रमाद॥
जाओ मिल करके समाज में काम करो चुप चाप।
जैसा हो चाहते बनाना पहले बनना आप॥

[५१]

देशभक्त का हृदय बड़ा ही होता है बलवान।
शय्या काँटों की लगती है उसको फूल समान॥
विचलित उसे न कर सकता है कभी मान अपमान।
उसे कहाँ सुधि कष्टों की है, है वह प्रेम-निधान॥

[५२]

इसी समय मैं भी करता हूँ तज यह कुटी प्रवास।
ठीक समय पर मैं पहुँचूँगा पुत्र! तुम्हारे पास॥
मंगलमय हो मार्ग तुम्हारा, हो तुम पूरण काम।
पुत्र! सुयश की अमर गोद में पाओ तुम विश्राम॥

---

* चौथा परिच्छेद *

[१]

परम प्रेम-पागलिनी विजया भरती आह उसास।
कई मास तक रही भटकती किया न कहीं निवास॥
बन बन में गाती फिरती थी चुनती फिरती फूल।
रटती हुई प्राणप्यारे को, गई जगत को भूल॥

[२]

पल्लव लता कुसुम कलियों को करती थी अति प्यार।
बन के पशु पक्षी से भी वह रखती प्रेम अपार॥
जा पहुँची पथ भूल एक दिन एक गाँव के पास।
था प्रभात का समय हर्ष का, पर था गाँव उदास॥

[३]

जाड़े के थे दिवस, माघ का मास, भयानक शीत।
काँप रहे थे दीन घरों में वस्त्र-हीन भय-भीत॥
देखा, केवल चर्माच्छादित एक मनुज-कंकाल।
फटा पुराना एक अँगोछा पहने परम बिहाल॥

[४]

बाहुबद्ध कर पदस्तम्भ को चिन्ता-ग्रसित अधीर।
घुटनों-मध्य चिबुक रख कंपित थर थर अबल शरीर॥
आशा धरे धूप की उर में पीठ किये रवि-ओर।
बैठा है; पर हाय ! निर्दयी घिर आये घन घोर॥

[५]

इस पर भी चल पड़ा तीर सा तीक्ष्ण तुषारित पौन।
दाँत बज उठे, सिकुड़ गया वह, तुहिन-निपीड़ित मौन॥
कहने लगा, "किया था मैंने हाय ! कौन सा पाप।
हे भगवान ! मिल रहा जिसका फल है यह सन्ताप"॥

[६]

वह सामने द्वार के अपने बैठा था अति दीन।
घरमें उस की दुखिया गृहिणी थी तन छीन मलीन॥
बालक एक फूल मुरझा सा चिपकाये थी गोद।
उदासीनता दरिद्रता का था आमोद प्रमोद॥

[७]

ओढ़ घास की बनी चटाई बिछा भूमि पर घास।
वे सोते थे पास पास ही प्रायः कर उपवास॥
उसी चटाई के नीचे से उठ वह नर-कंकाल।
आ बैठा था घाम के लिये बाहर प्रातःकाल॥

[८]

विजया आ बैठी ढिग उस के थर थर कम्पित गात ।
विषम हृदय-वेधक बहता था शीतल हिममय वात ॥
विजया का हिम से विलोककर करुणोत्पादक हाल ।
द्रवीभूत हो गया दया से वह मानव-कंकाल ॥

[९]

घर में जाकर निज गृहिणी से माँग चटाई घास ।
ले आया पावक पड़ोस से झट विजया के पास ॥
विजया को दो उढ़ा चटाई निकट जला दी आग ।
विजया मोहित हुई देख कर उस गरीब का त्याग ॥

[१०]

उसने उसे पास बैठाया पूछा प्रेम समेत ।
"क्यों भाई ! तुम बड़े दीन हो, क्या है इसका हेत" ?
बोला दीन उसास खींच कर, "मैं हूँ एक किसान ।
साधारण खेती बारी से पाल रहा था प्राण ॥

[११]

मैं हूँ, मेरी घरवाली है, गोद एक है बाल ।
सुख दुख से थोड़ी आमद में कट जाता था काल ॥
कई दिन हुये, एक लोकप्रिय सज्जन पर हो क्रुद्ध ।
रच षड़यन्त्र राजदूतों ने उसके मान-विरुद्ध ॥

[१२]

करना चाहा मुझे गवाही देने को तैयार ।
पर मैंने असत्य भाषण से किया साफ़ इन्कार ॥
इससे मुझ पर कुपित हुये वे करके कोप कराल ।
मुझे फँसाया निरपराध ही झूठ बना कर जाल ॥

[१३]

अन्न वस्त्र बरतन बिकवा कर घर में जो था माल।
सब धन लिया छीन निष्ठुर हो मैं अब हूँ कंगाल॥
है न एक दाना खाने को प्रायः कर उपवास।
सो जाता हूँ यही चटाई ओढ़ बिछाकर घास॥"

[१४]

इतना कह आँखें भर आईं रोया सिसक किसान।
विजया भी सिर नीचा करके रोने लगी निदान॥
मनमें कहने लगी—"अहा! है निपट गरीब किसान।
पर उदारता से भूषित है इसका हृदय महान॥

[१५]

इनकी सेवा करना ही था प्रियतम का उद्देश।
अब मैं वही पूर्ण करने को घूमूँगी सब देश॥
इनके ऊपर पड़ी हुई है छाया अति प्रतिकूल।
उसे हटाने से ही होगा उन्नति का दृढ़ मूल॥

[१६]

सेवा-धर्म मुख्य है जग में लोक-शांति-प्रद काज।
एक दीन ने प्रबल प्रेम की धार पलट दी आज॥
प्रियतम को ढूँढना बनों में है उन्मत्त-प्रयास।
वास्तव में है दीन-जनों के सुख में उसका वास॥

[१७]

प्रियतम ने भी कहा यही था कैसा वचन अमोल!
"जग ही में जाना जाता है मनुष्यता का मोल"॥
आश्वासन दे उस किसान को विजया उठ तत्काल।
गाँव गाँव में घूम देखने लगी देश का हाल॥

[१८]
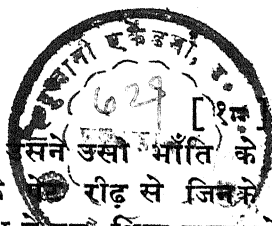
देखा उसने उसी भाँति के अगणित नर-कङ्काल।
चिपके पेट रीढ़ से जिनके चुचके पुचके गाल॥
विजया ने प्रण किया सुदृढ़ हो, कर प्रयत्न भरपूर।
तन मन दे इस दीन देश का कष्ट करूँगी दूर॥

[१९]

बहका कर इन बेचारों को ठगते हैं ठग लोग।
बदले में इनको देते हैं दंड दीनता रोग॥
इनको बना ज्ञान से बंचित वे करते हैं राज।
हाय! हाय! इस अधम स्वार्थ पर पड़ी न अबलों गाज॥

[२०]

विजया सत्य प्रेम से अपना करके कायाकल्प।
चली लोक-सेवा करने को होकर दृढ़ संकल्प।
उस दिन से देखा न किसी ने फिर उसका वह रूप।
देख पड़ी वह एक गाँव में सन्यासिनी स्वरूप॥

[२१]

लिये त्रिशूल हाथ में करने चली देश-उद्धार।
गाँव गाँव में लगी घूमने सेवा-व्रत उर धार॥
द्वार द्वार पर जाकर विजया करुणा-प्रेम-निधान।
सब को लगी जगाने गाकर देशभक्ति मय गान॥

[२२]

उसके गान अतीत काल के थे सुख रूप ललाम।
सुन करके आहें भरते थे कृषक कलेजा थाम॥
उसके गान हृदय में भरते थे साहस उत्साह।
बतलाते थे स्वतन्त्रता को सुख पाने की राह॥

[२३]

उसके गान-श्रवण की पक्षी पशु तक में थी चाह।
उनका भी कुराज्य में सुख से होता था न निबाह॥
उसके गान मन्त्र थे मोहक सदगुण गण की खान।
जिसने सुना वही उठ बैठा, दूर हुआ अज्ञान॥

[२४]

उसके गानों ने उपजाये सुदृढ़ साहसी शूर।
मिटा विरोध, समाजसे हुआ दंभ द्वेष दुख दूर॥
उसके गान जवान श्रवण कर कायरपना बिसार।
होते थे स्वदेश-सेवा में मरने को तैयार॥

[२५]

जिसने भी सुन पाया उसका हृदय-विमोहक गान।
हुआ उसी का देश-प्रेम से पूरण प्लावित प्रान॥
देवी मान लोग करते थे आराधना सहर्ष।
उसे देख उनमें जगता था उन्नति का उत्कर्ष॥

[२६]

विजया ने फिर गाँव गाँव में करके मङ्गल गान।
एक भाव में भरा सभी को सुना मनोहर तान॥
विजया गई हृदय लोगों का प्रेम-सुधा से सींच।
उसके बाद युवक आ पहुँचा उन गावों के बीच॥

[२७]

उसने उन हृदयों में बोया स्वतन्त्रता का बीज।
सींचा उन हृदयों ने उसको स्वयं पसीज पसीज॥
मिलन नगर के आस पास मुनि देते थे व्याख्यान।
धर्म-स्वदेश-जाति—रक्षा को करते थे आह्वान॥

[२८]

जागे लोग, सचेत हुये सब सुन मुनि का उपदेश।
उद्यत हुये देश-रक्षा में सहने को सब क्लेश॥
किया उन्होंने एक एक का देश-प्रेममय प्रान।
होने लगा वीर-मंडल में स्वतन्त्रता का गान॥

[२६]

स्वतन्त्रता के लिये प्रजा जब उत्सुक हुई नितान्त।
तब मदांध आष्ट्रियन वृन्द ने सुन पाया वृत्तान्त॥
वे अतीव क्रोधातुर धाये दलबल सहित अपार।
करने लगे उठे हृदयों पर भीषण अत्याचार।

[३०]

धर विजया को, पकड़ युवा को, मुनि को डालो मार।
गाँव गाँव रिपुओं ने घेरा करते हुये पुकार॥
सहते सहते प्रजा थकी थी अरि के अत्याचार।
देख कष्ट निज हितैषियों का सकी न क्रोध सँभार॥

[३१]

निकली प्रजा मिलन की घर से क्रोधित सिंह समान।
जन्मभूमि की स्वतन्त्रता में होने को बलिदान॥
आकर मिला युवक भी उनमें बढ़ा विपुल उत्साह।
हृदय हृदय में देशभक्ति का उमड़ा प्रबल प्रबाह॥

[३२]

खड़े हुये निज बैर भूल कर भाई भाई साथ।
स्वतन्त्रतादायिनी खड्ग से भूषित थे सब हाथ॥
क्रुद्ध शत्रुओं ने जब देखा प्रजा हुई उद्दंड।
दौड़े परम क्रुद्ध देने को उसे यथोचित दंड॥

[३३]

सुना पूर्वजों की गुणगाथा भर कर शौर्य अपार।
किया युवक ने सब लोगों को लड़ने को तैयार॥
बढ़े कुचलने को बैरी-गण मानो मत्त मतंग।
झपटे लोग सिंह सम, तब तो पलट गया सब ढंग॥

[३४]

लोहू गर्म हुआ वीरों का फड़क उठे सब अङ्ग।
नशा वीरता का चढ़ आया देख रक्त का रंग॥
शस्त्र-सुसज्जित शत्रु अधिक थे अल्प प्रजा बलहीन।
युवक स्वयं आहत था यद्यपि दिखता था न मलीन॥

[३५]

उखड़ रहे थे पैर प्रजा के छूट रहा था धीर।
इतने ही में मुनि आ पहुँचे लिये असंख्यक वीर॥
गरज उठे सब सिंहनाद से झपटे शस्त्र सँभाल।
टिक न सके, बैरी कुछ पिछड़े सह आक्रमण कराल॥

[३६]

विजया भी भैरवी भेस में आई धर करवाल।
उसके साथ बहुत थे वे हा मंत्र-मुग्ध कंकाल॥
देख सामने विषम समस्या त्याग विजय की आस।
रिपु भयभीत प्राण-रक्षा का करने लगे प्रयास॥

[३७]

आहत युवक थक गया, तन से निकल रहा था रक्त।
था तथापि वह शत्रु-मथन में पूर्ण रूप आसक्त॥
थका देख कर इस अवसर में उठा तीक्ष्ण तलवार!
एक ओर से एक शत्रु ने किया अचानक वार॥

[३८]

युवक न वार बचा सकता था देख काल विकराल।
आगे बढ़ अपनी छाती पर ली मुनिने करवाल॥
तब तक अरि का शीश युवक ने मुड़कर लिया उतार।
पर मुनिकी गति देख बह चली आँखों से जलधार॥

[३९]

विजया ने दूसरी ओर से कर भैरव हुंकार।
मार भगाया शत्रु-वृन्द को करके कठिन प्रहार॥
आगे आगे भगे दस्युगण पागल श्वान समान।
कंकालों ने उन्हें खदेड़ा कर में लाठी तान॥

[४०]

मुनि थे अति प्रसन्न, उमड़ा था आँखों में आनन्द।
बोले, "जीवन भर में मैं हूँ आज सुखी स्वच्छन्द॥
मेरे सन्मुख आज हमारे बैरी भागे हार।
देख स्वतन्त्र मिलन को मन में है आनन्द अपार॥

[४१]

एक बार दुर्दम्य शत्रु से प्रजा गई है जीत।
तो वह सदा विजयिनी होगी, बैरी हैं भयभीत॥
तुमने अपने पूज्य पिता का माना शुभ सन्देश।
व्रत स्वदेश-सेवा का धर कर किया स्वतन्त्र स्वदेश॥

[४२]

धन्य भाग्य है, पुत्र! तुम्हारा जीवन हुआ पवित्र।
तुम से हुआ यशस्वी यश भी देख विशुद्ध चरित्र॥
अब विजया के साथ शांति सुख पाओ सुयश अतीव।
जब तुम मिले, उसी दिन वह भी थी मिल चुकी सजीव॥

[४३]

पर वह कहाँ गई, न हुआ कुछ पता आज तक ज्ञात।
यह कह मुनि ने कही युवकसे उस दिन की सब बात ॥
बोले, "कभी न निष्फल होगा उसका सच्चा स्नेह।
सच्चा प्रेम पूर्ण होता है जग में निस्संदेह ॥

[४४]

बेटा ! मैं हूँ पिता तुम्हारा, तुम न सके पहचान।
बचपन में ही बिलग हुये थे, मेरे जीवन प्रान !
तुम विजया के साथ प्राणप्रिय ! करो लोक-कल्याण।
सुखी रहो, अब मैं करता हूँ सुखी सहर्ष प्रयाण ॥

[४५]

"जय स्वदेश की" "जय स्वदेश की" पड़ा सुनाई नाद।
उसी समय मुनि ने तन त्यागा, दे शुभ आशीर्वाद ॥
"हाय ! पिता," कह युवक व्यथितचित गिरकर हुआ अचेत।
धन्य पिता का प्रम दे दिया प्राण पुत्र के हेत ॥

पँचवाँ परिच्छेद

[१]

वही कुटी, सुनसान वही बन, वही दिशा, आकाश।
उदित हो रहा था प्रभात में रवि का अरुण प्रकाश ॥
मूर्च्छित था विजया के उरु पर सिर रख युवक प्रबीन।
वह उसका मुख देख रही थी आशा धार नवीन ॥

[२]

कुछ कुछ होने लगी युवक की मूर्च्छा अन्तर्द्धान।
तब वीणावाणी विजया ने गाया मङ्गल-गान ॥
एक बार दृग खोल युवक ने पुनः कर लिया बन्द।
विमल चंदको निकट देखकर उसे हुआ आनन्द ॥

[३]

जड़ चेतन की एक अकृत्रिम भाषा है ध्वनि-हीन।
उसे बोलते हैं आपस में केवल प्रेम-प्रबीन॥
'चंद चूम लूँ' बोला मन में जैसे ही आनंद।
आकर लगा तुरत ओठों से मधुर सुधाधर चंद॥

॥ इति ॥

Printed at The Belvedere Press, Allahabad, by E. Hall.

पथिक पर सम्मतियाँ ।

बाबू भगवान्‌दास एम० ए०, काशी—सुबोध्यता और प्रसाद-गुण, करुण, वीर, शांत रस, सात्विक प्रेम, देशभक्ति, वैराग्य, परार्थ बुद्धि, आत्मत्याग, दुष्ट नीति पर क्षमा की जीत, यह सब बहुत अच्छे प्रकार से दिखाया गया है।

कवि श्रीधर पाठक—पथिक सर्वांशतः एक सत्काव्य है

कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय—पथिक एक मौलिक काव्य है। इस में भाव और माधुर्य का मणि-काञ्चन-योग है।

कवि मैथिलीशरण गुप्त—

इस कालीन सिद्ध कविवर ने पावन पथिक कहानी।
उज्ज्वल गीतों में रच की है कीर्त्तिमयी निज बानी॥

पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी—कल्पना और रचना बड़ी ही रोचक है। वर्णन सुन्दर और स्वाभाविक है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन—मुझे निश्चय है कि हिन्दी के उच्च कोटि के काव्यों में इसकी गणना होगी।

कवि शङ्कर—

शङ्कर पथिक प्रतापी माना—भाव रुचिर रचना का जाना।
पाय प्रकाश ज्ञान-सविता का—फूला हृदय-पद्म कविता का॥

लाला भगवानदीन—पथिक को सिर से पैर तक देखा। रंग चोखा, ढंग अनोखा, भाषा नुकीली और वर्णनशैली बड़ी चुटीली है।

रचयिता—पंडित रामनरेश त्रिपाठी। बढ़िया काग़ज़ पर सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य आठ आना।

मिलने का पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।